[2012] 1 एस.सी.आर. 195

बिमल कुमार और अन्य

बनाम

शकुंतला देवी और अन्य

(2012 की सिविल अपील संख्या 2524)

फ़रवरी 27, 2012

[दलवीर भंडारी और दीपक मिश्रा, जे.जे.]

डिक्री:

अंतिम डिक्री और प्रारंभिक डिक्री - के बीच अंतर - चर्चा की गई ।

प्रारंभिक डिक्री - समझौता आवेदन - आवेदन के स्वरूप से पता चला कि समझौता करने वाले पक्षों ने संपूर्ण विवाद सुलझा लिया है और वे अपने-अपने शेयरों को आवंटित संपत्तियों पर अलग-अलग और अनन्य रूप से कब्जा कर चुके हैं - समझौता आवेदन में भविष्य की कार्रवाई के बारे में कोई खंड नहीं था - क्या समझौते के आधार पर प्रथम दृष्टया न्यायालय द्वारा पारित डिक्री लागू हो गई थी या इसे निष्पादन योग्य बनाने के लिए अंतिम डिक्री कार्यवाही पूरी करने की आवश्यकता वाली प्रारंभिक डिक्री का दर्जा प्राप्त था - निर्णय: पक्षकारों को पूरी तरह से पता था और यह सही भी था कि उनके अधिकारों का फल मिल चुका था और उनका कब्जा विशेष रूप से निर्धारित हो चुका था - वे अच्छी तरह से जानते थे कि डिक्री अंतिम प्रकृति की थी क्योंकि उनके शेयर आवंटित हो चुके थे और अब कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं थी - उनके अधिकारों ने अंतिम रूप प्राप्त कर लिया था और किसी भी स्पेक्ट्रम से आगे कोई जांच करने की आवश्यकता नहीं थी - पूरी बात समझौते के आधार पर पारित डिक्री में सन्निहित थी - इस प्रकार समझौता डिक्री अंतिम थी।

परिसीमा अधिनियम, 1963: अनुच्छेद 136 - निष्पादन आवेदन - क्या परिसीमा अवधि के अन्तर्गत मामला आया - विभाजन का वाद - अपीलकर्ता के पूर्ववर्ती प्रतिवादी में से एक ने एकपक्षीय कार्यवाही की - समझौता डिक्री - अपीलकर्ताओं द्वारा विभाजन के लिए बाद में दायर किया गया वाद इस आधार पर कि पहले की डिक्री धोखाधड़ी से प्राप्त की गई थी - खारिज - परिसीमा अवधि के पश्चात निष्पादन आवेदन दायर किया गया - अपीलकर्ताओं द्वारा आपत्ति कि निष्पादन कार्यवाही परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित थी - **निर्णित**: पहले के निर्णय या उससे उत्पन्न किसी कार्यवाही पर कोई रोक नहीं थी - डिक्री धारक के लिए डिक्री को निष्पादित करने में कोई बाधा या अक्षमता नहीं थी, लेकिन ऐसा नहीं किया गया - इसलिए, निष्पादन कार्यवाही की शुरुआत निस्संदेह परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित थी।

शब्द और वाक्यांश: समझौता/समाधान - अर्थ

पक्षकारों के बीच विभाजन का मुकदमा समझौता हुआ। अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती 'के' ने यद्यपि मुकदमे में उपस्थित होकर लिखित बयान दाखिल किया था, तथापि, उसके बाद उसने प्रतिवाद न करने का निर्णय लिया। समझौता याचिका में कहा गया था कि पक्षकारों के पास अपनी-अपनी संपत्तियों का पृथक एवं अनन्य कब्जा था तथा उन्होंने अपने-अपने हिस्से में आवंटित संपत्तियों का पृथक एवं अनन्य कब्जा प्राप्त कर लिया था। विचारित न्यायालय ने समझौता याचिका स्वीकार कर ली तथा 3.4.1964 को 'के' को एकपक्षीय मानते हुए समझौता डिक्री पारित कर दी। 'के' ने इस आधार पर एक नया विभाजन मुकदमा शुरू किया कि पहले की डिक्री धोखाधड़ी से प्राप्त की गई थी। उक्त मुकदमा 27 अगस्त, 1994 को खारिज कर दिया गया। उसके विरुद्ध अपील 6.1.2004 को अभियोजन के अभाव में खारिज कर दी गई। इस मोड़ पर, प्रतिवादियों ने समझौता डिक्री के निष्पादन की मांग करते हुए निष्पादन मामला दायर किया। इस बीच, 'के' की मृत्यु हो गई और उसके कानूनी उत्तराधिकारियों, अपीलकर्ताओं के खिलाफ निष्पादन लगाया गया। अपीलकर्ताओं द्वारा आपत्ति उठाई गई कि निष्पादन कार्यवाही सीमा द्वारा वर्जित थी। उप-न्यायाधीश ने निष्पादन कार्यवाही को इस आधार पर खारिज कर दिया कि यह सीमा द्वारा पूरी तरह से वर्जित थी। उच्च न्यायालय के एकल

न्यायाधीश ने इस आधार पर पुनरीक्षण की अनुमति दी कि निष्पादन का मामला सीमा द्वारा वर्जित नहीं था।

तत्काल अपील में विचार के लिए जो प्रश्न उठे थे, वे थे कि क्या समझौते के आधार पर प्रथम दृष्टया न्यायालय द्वारा पारित डिक्री प्रवर्तनीय हो गई थी या उसे प्रारंभिक डिक्री का दर्जा प्राप्त था, जिसके लिए उसे निष्पादन योग्य बनाने हेतु अंतिम डिक्री कार्यवाही पूरी करने की आवश्यकता थी और क्या निष्पादन कार्यवाही सीमा अवधि के कानून के तहत अस्थिर थी।

अपील की अनुमति देते हुए, न्यायालय ने

निर्णित: **1**. संपूर्ण समझौता आवेदन के सार का अवलोकन करने से पता चला कि समझौता करने वाले पक्षों ने संपूर्ण विवाद का निपटारा कर दिया है। प्रतिवादी संख्या 3, जो अपीलकर्ताओं का पूर्ववर्ती हित था, को कोई शेयर आवंटित नहीं किया गया था। जैसा कि समझौते की शर्तों से स्पष्ट है, जो डिक्री का हिस्सा थी, पक्षों ने स्वीकार किया था कि वे क्रमशः अपनी-अपनी संपत्तियों के अलग-अलग और अनन्य कब्जे में थे और इसके अलावा उन्होंने अपने-अपने शेयरों को आवंटित संपत्तियों का अलग-अलग और अनन्य कब्जा प्राप्त कर लिया था। इस प्रकार, उनके संबंधित शेयर और अनन्य कब्जे को उक्त समझौता याचिका के आधार पर स्वीकार कर लिया गया और एक डिक्री तैयार की गई। न्यायालय ने समझौते की सामग्री पर ध्यान दिया था, जिसमें यह प्रार्थना की गई थी कि डिक्री समझौते की शर्तों के अनुसार पारित की जाए। यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट था कि न्यायालय ने इस आधार पर कार्यवाही की थी कि वह समझौता याचिका में निर्धारित शर्तों के अनुसार मुकदमे का अंतिम रूप से निपटारा कर रहा था। समझौते के आवेदन में अनन्य कब्जे का तथ्य भी दर्ज किया गया था। यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि पार्टियों को विभिन्न अचल संपत्तियों पर अलग-अलग कब्जे दिए गए हैं। प्रतिवादियों द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में भी यह स्वीकार किया गया था कि आवंटन के अनुसार कब्जा पार्टियों के पास ही रहा है। [पैरा 16, 17) [206-बी-एफ]

2. प्रारंभिक डिक्री वह होती है जो पक्षों के अधिकारों और दायित्वों की घोषणा करती है तथा वास्तविक परिणाम को आगे की कार्यवाही में तय करने के लिए छोड़ देती है। फिर, प्रारंभिक डिक्री के अनुसरण में की गई आगे की जांच के परिणामस्वरूप, पक्षों के अधिकारों का अंतिम रूप से निर्धारण किया जाता है तथा ऐसे निर्धारण के अनुसार डिक्री पारित की जाती है, जो अंतिम डिक्री होती है। यह स्पष्ट है कि इस मामले में, पक्षों ने समझौता किया तथा स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि वे संपत्तियों के पृथक तथा अनन्य कब्जे में हैं तथा उन्हें पहले ही आवंटित किया जा चुका है। यह भी स्वीकार किया गया कि वे अपने-अपने शेयरों के कब्जे में हैं तथा इसलिए, कोई अंतिम डिक्री या निष्पादन दायर करने की आवश्यकता नहीं है। यह प्रदर्शित करने योग्य है कि समझौता आवेदन में भविष्य की कार्यवाही के संबंध में कोई खंड नहीं था। पक्ष पूरी तरह से सचेत थे तथा यह सही भी था कि उनके अधिकार फलित हो चुके थे तथा उनका कब्जा अनन्य रूप से निर्धारित हो चुका था। वे अच्छी तरह जानते थे कि यह डिक्री अंतिम प्रकृति की थी क्योंकि उनके शेयर आवंटित किए जा चुके थे और अब कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं थी। उनके अधिकार अंतिम हो चुके थे और किसी भी क्षेत्र से आगे कोई जांच करने की आवश्यकता नहीं थी। पूरी बात समझौते की नींव पर पारित डिक्री में सन्निहित थी। [पैरा 22, 23] [209-डी-जी-एच; 210-बी]

3. 'समझौता' शब्द का अर्थ है आपसी सहमति से मतभेदों का समाधान। इस प्रक्रिया में, विरोधी दावे समाप्त हो जाते हैं। पक्षों के बीच विवाद को उचित तरीके से समाप्त कर दिया जाता है। पक्षों द्वारा किया गया समझौता मुकदमेबाजी की लड़ाई को समाप्त कर देता है। कभी-कभी पक्षकारों को लगता है कि यह दुर्भाग्यपूर्ण कड़वा संघर्ष है और वे विवाद को सुलझाने के लिए समझदारी से काम लेते हैं। कुछ मामलों में, शुभचिंतकों के हस्तक्षेप से, सुलह प्रक्रिया शुरू होती है और अंततः, आम सहमति और सहमति से अधिकार ठोस हो जाते हैं। स्पष्ट मन से किया गया पारस्परिक समझौता महान माना जाता है। यह मानव मन के शानदार और राजसी पहलुओं को दर्शाता है। मामलों की उच्च स्थिति, उदात्त गंभीरता और सामाजिक स्थिरता का सार लाती है। इस मामले में,

जैसा कि तथ्यात्मक मैट्रिक्स से पता चलता है, भविष्य में कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं छोड़ते हुए सभी कोणों से संपूर्णता में समझौते की नींव पर एक डिक्री पारित की गई। मामले का पूरी तरह से समाधान कर दिया गया था और न्यायालय ने उसी पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दी थी। इस प्रकार, अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि दिनांक 03.04.1964 का समझौता डिक्री एक अंतिम डिक्री थी। [पैरा 24] [210-सी-एफ]

4. कानून में यह अच्छी तरह से स्थापित है कि एक प्रारंभिक डिक्री अधिकारों और दायित्वों की घोषणा करती है, लेकिन किसी दिए गए मामले में, एक डिक्री प्रारंभिक और अंतिम दोनों हो सकती है और इसके अलावा, एक डिक्री आंशिक रूप से प्रारंभिक और आंशिक रूप से अंतिम हो सकती है। जो निष्पादन योग्य है वह एक अंतिम डिक्री है और प्रारंभिक डिक्री नहीं है जब तक कि अंतिम डिक्री प्रारंभिक डिक्री का हिस्सा न हो। इसके अलावा, किसी भी समय एक अंतिम डिक्री कार्यवाही शुरू की जा सकती है। [पैरा 27] [211-जी-एच; 212-ए-बी]

राचकोंडा वेंकट राव और अन्य बनाम आर. सत्या बाई (डी) एल.आर. और अन्य एआईआर (2003) एससी 3322: 2003 (3) सप्लीमेंट एससीआर 629; रेणु देवी बनाम महेंद्र सिंह और अन्य एआईआर 2003 एससी 1608: 2003 (1) एससीआर 820 - पर भरोसा किया गया।

मुजफ्फर हुसैन बनाम शराफत हुसैन एआईआर 1933 ओउध 562; रघुबीर साहू बनाम अजोध्या साहू एआईआर 1945 पैट 482 -स्वीकृत।

5. परिसीमा अधिनियम की धारा 136 के अवलोकन से पता चला कि किसी डिक्री (अनिवार्य निषेधाज्ञा प्रदान करने वाली डिक्री के अलावा) या किसी सिविल न्यायालय के आदेश के निष्पादन के लिए आवेदन बारह वर्ष की अवधि के भीतर दायर किया जाना चाहिए। इस मामले में, समझौता डिक्री को अंतिम डिक्री का दर्जा प्राप्त था और यह तत्काल निष्पादन योग्य थी। जिस अवधि के दौरान अपीलकर्ताओं द्वारा दायर वाद और अपील लंबित रही, उसे निष्पादन के उद्देश्य से बाहर नहीं रखा जाना चाहिए था। उक्त निर्णय या उससे

उत्पन्न किसी कार्यवाही पर कोई रोक नहीं थी। किसी भी न्यायालय से किसी भी निषेधाज्ञा के अभाव में, डिक्रीधारक डिक्री को निष्पादित करने का हकदार था। डिक्री को निष्पादित करने के लिए प्रतिवादियों के रास्ते में कोई बाधा या अक्षमता नहीं थी, लेकिन ऐसा नहीं किया गया। इसलिए, अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि निष्पादन कार्यवाही की शुरुआत निस्संदेह सीमा द्वारा रोक दी गई थी। इस प्रकार विश्लेषण करने पर, एकल न्यायाधीश द्वारा बताए गए कारण बिल्कुल भी टिकने योग्य नहीं हैं। अधिनियम के अनुच्छेद 136 के तहत निर्धारित सीमा अवधि को माफ नहीं किया जा सकता था। भारती देवी के मामले में लिए गए निर्णय पर भरोसा करना पूरी तरह से गलत है, क्योंकि उक्त मामले में निष्पादन कार्यवाही स्थायी निषेधाज्ञा के लिए शुरू की गई थी। [पैरा 30, 32, 35) [213-सी; 217-ई-एच; 218-ए-बी]

हशम अब्बास सय्यद बनाम उस्मान अब्बास सय्यद और अन्य (2007) 2 एससीसी 355: 2006 (10) अनुपूरक एससीआर 740; बिकोबा देवड़ा गायकवाड़ और अन्य बनाम हीराबाई मारुतिराव घोरगरे और अन्य (2008) 8 एससीसी 198: 2008 (9) एससीआर 1038; डॉ. चिरंजी लाल (डीजे बाय एलआरएस. बनाम हरि दास (डीजे बाय एलआरएस., (2005) 10 एससीसी 746: 2005 (1) अनुपूरक एससीआर 359; राम बचन राय और अन्य बनाम राम उदार राय और अन्य (2006) 9 धारा 446:2006 (1) अनुपूरक एससीआर 896; रतन सिंह बनाम विजय सिंह और अन्य 2000 (8) स्केल 214; मनोहर बनाम जयपा/सिंह एआईआर 2008 एससी 429: 2007 (12) एससीआर 364 - पर भरोसा किया गया।

भारती देवी बनाम फागू महतो 2009 (3) जेएलजेआर 90: ए.आई.आर. 2010 एच झार 10 - लागू नहीं माना गया

केस लॉ संदर्भ:

ए.आई.आर. 2010 झार 10	अनुपयुक्त	पैरा 13,26, 35

2003 (3) पूरक एस.सी.आर. 629	पर भरोसा	पैरा 18
ए.आई.आर. 1933 ओउध 562	अनुमोदित	पैरा 19
ए.आई.आर. 1945 पैट 482	अनुमोदित	पैरा 20
2003 (1) एस.सी.आर. 820	पर भरोसा	पैरा 21
2006 (10) पूरक SCR 740	पर भरोसा	पैरा 27
2008 (9) एससीआर 1038	पर भरोसा	पैरा 28
2005 (1) पूरक SCR 359	पर भरोसा	पैरा 30, 31
2006 (1) पूरक एससीआर 896	पर भरोसा	पैरा 31
2000 (8) स्केल 214	पर भरोसा	पैरा 32
2007 (12) एससीआर 364	पर भरोसा	पैरा 34

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2012 की सिविल अपील संख्या 2524

झारखंड उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 19.08.2009 से 2007 के रंचिन सिविल संशोधन संख्या 53 में।

अपीलकर्ताओं के लिए अजीत कुमार सिन्हा, अंभोज कुमार सिन्हा।

उत्तरदाताओं के लिए एसएस शमशेरी, भूपेंद्र यादव, बबीता यादव, भक्ति वर्धन सिंह, आर.सी. कोहली।

न्यायालय का निर्णय दीपक मिश्रा, जे द्वारा दिया गया

1. अनुमति स्वीकार की गई .

2. इस अपील में, झारखंड उच्च न्यायालय, रांची के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा सी.आर. संख्या 53/2007 में पारित दिनांक 19.9.2009 के आदेश पर आक्षेप किया गया है, जिसके माध्यम से उन्होंने विद्वान उप-न्यायाधीश (प्रथम), रांची द्वारा पारित दिनांक 10.7.2006 के आदेश को खारिज कर दिया है, जिसके तहत उन्होंने प्रतिवादियों द्वारा दायर निष्पादन वाद संख्या 8/2004 को समय-सीमा द्वारा वर्जित होने के कारण खारिज कर दिया था।

3. अनावश्यक विवरणों को अलग करते हुए, वर्तमान अपील के निपटान के लिए जिन तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक है, वे हैं कि कनीलाल कसेरा ने अपने पिता नानक कसेरा और अन्य भाइयों के खिलाफ विभाजन वाद संख्या 131/1962 दायर किया था। वर्तमान अपीलकर्ताओं के पिता किशोरी लाल कसेरा को छोड़कर वाद में समझौता कर लिया गया और वादी और प्रतिवादी के बीच समझौता की संयुक्त याचिका संख्या 1, 2, 4 से 9 और 11 से 18 दायर की गई। यह ध्यान देने योग्य है कि किशोरी लाल कसेरा वाद में उपस्थित हुए थे और लिखित बयान दायर किया था, लेकिन उसके बाद उन्होंने विरोध नहीं करने का फैसला किया।

4. समझौता याचिका में यह निहित था कि प्रतिवादी संख्या 1, 9, 11 और 12 ने संपत्ति के मुकदमे अनुसूची के मद संख्या 3 और 8 में अपने सभी हितों को त्याग दिया है, जो कि नगर सर्वेक्षण प्लॉट संख्या 621 के हिस्से पर स्थित वार्ड संख्या II के नए होल्डिंग नंबर 509A की होल्डिंग नंबर 285 और नगर सर्वेक्षण प्लॉट संख्या 902 पर स्थित वार्ड संख्या 1 की होल्डिंग नंबर 431 है, और आगे घोषित किया कि मुकदमे में शामिल किसी भी अन्य संपत्ति के साथ उनका कोई दावा या संबंध नहीं है; अनुसूची के मद 5 के अनुसार "सेवन ब्रदर्स स्टील फर्नीचर वर्क्स" नामक व्यवसाय विशेष रूप से प्रतिवादी संख्या 2, मोती लाल कसेरा का है, और न तो वादी और न ही अन्य प्रतिवादियों में से किसी का कभी कोई दावा या हित था या होगा; तथा यह कि नगरपालिका होल्डिंग संख्या 431, वार्ड संख्या 1, अनुसूची की मद 3 में शामिल मकान और परिसर का

आधा भाग, तथा वार्ड II की होल्डिंग संख्या 509A का आधा भाग, जो एम.एस. प्लॉट संख्या 631, अनुसूची की मद 2 के भाग पर स्थित है, सभी देनदारियों और बकाया राशियों सहित प्रतिवादी संख्या 2 का होगा तथा वादी और अन्य प्रतिवादियों का उक्त सम्पत्तियों में कोई देनदारी या हित नहीं होगा; तथा यह कि अनुसूची की मद 6A के अंतर्गत 'छोटानागपुर टिन वर्क्स' के नाम से किया जाने वाला व्यवसाय प्रतिवादी संख्या 5, प्रकाश कुमार कसेरा का एकमात्र पृथक व्यवसाय था, तथा वादी या अन्य प्रतिवादियों का उक्त सम्पत्ति पर कोई दावा नहीं था।

5. आवेदन में आगे कहा गया है कि वार्ड 1 के होल्डिंग नंबर 431, अनुसूची के मद 3 में शामिल मकान और परिसर का विभाजन, जो प्रदर्शनी में हरे रंग से चिह्नित है, विशेष रूप से प्रतिवादी नंबर 4, मोहन लाल कसेरा का होगा, और न तो वादी और न ही अन्य प्रतिवादियों का कोई दावा या हित होगा; बाजार तन रांची में लोहे की दुकान का व्यवसाय, अनुसूची के मद 6 (सी), प्रतिवादी नंबर 6, सुरेंद्र लाल कसेरा का अलग और अनन्य व्यवसाय था, और किसी अन्य का कोई दावा या हित नहीं था और वार्ड नंबर 1 के नगरपालिका होल्डिंग नंबर 431, अनुसूची के मद 3 में शामिल भवन और परिसर का हिस्सा, जो पीले रंग से चिह्नित है, भी प्रतिवादी नंबर 6 का होगा और किसी अन्य का कोई दावा या हित नहीं था; कि वार्ड संख्या 1 के नगरपालिका होल्डिंग संख्या 431 में शामिल भवन और परिसर का हिस्सा, अनुसूची के मद 3, नीले रंग में चिह्नित, और होल्डिंग संख्या 509A में शामिल दुकान परिसर का आधा हिस्सा, जो शिकायत की अनुसूची के मद संख्या 2 के एम.एस. प्लॉट संख्या 621 का हिस्सा है, विशेष रूप से वादी का होगा और उस पर उसका पूर्ण अधिकार होगा।

6. इसके अलावा, वादी ने प्रतिवादी संख्या 1 के विरुद्ध बिंद्रीलाल अग्रवाल के सभी बकाया भुगतान करने पर सहमति व्यक्त की है और कोई भी प्रतिवादी इसके लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

7. इस बात पर भी सहमति हुई कि रांची नगर पालिका के वार्ड II के होल्डिंग 6 पर स्थित मकान, जिसमें खाता संख्या 71 प्लॉट संख्या 72 क्षेत्रफल 61 डिसमिल और प्लॉट संख्या 79 क्षेत्रफल $7^{1/2}$ डिसमिल कुल क्षेत्रफल 14 डिसमिल शामिल है, अनुसूची की मद संख्या 4 है तथा होल्डिंग संख्या 180 वार्ड III के सर्वे प्लॉट संख्या 92 क्षेत्रफल 0.30 रकबा और हजामटोलियो, रांची के नगरपालिका सर्वे प्लॉट संख्या 92 क्षेत्रफल 0.063 रकबा 0.093 रकबा शामिल मकान और परिसर, जो मद संख्या 5 है, श्रीमती रमा देवी की अलग और अनन्य संपत्ति है और यह केवल प्रतिवादी संख्या 7, श्रीमती रमा देवी, हीरा लाल कसेरा की विधवा की होगी और किसी अन्य का उक्त संपत्ति पर कोई दावा या सरोकार नहीं होगा; दुकान परिसर रांची नगर पालिका के वार्ड II के होल्डिंग नंबर 509 B है जो एम.एस. प्लॉट नंबर 621 के भाग पर स्थित है जो अनुसूची की मद संख्या 1 है और घर परिसर वार्ड 11 के होल्डिंग नंबर 133(g) से बना है जो मद संख्या 8 है और संपत्ति वार्ड नंबर I के होल्डिंग नंबर 145 ए से बनी है जो $6^{1/2}$ डिसमिल माप की है जो खाता नंबर 34 के प्लॉट नंबर 268 है जो अनुसूची की मद संख्या 9 है जो प्रतिवादी नंबर 8, श्रीमती मुनित्री देवी, पत्नी प्रकाश लाल कसेरा, प्रतिवादी नंबर 5 की है और किसी का कोई दावा या हित नहीं था; कि वार्ड I के होल्डिंग संख्या 318 में शामिल मधुकम, रांची स्थित मकान और परिसर अनुसूची की मद संख्या 10 है, जो प्रतिवादी संख्या 13, श्रीमती देवजानी देवी, पत्नी मोती लाल कसेरा, प्रतिवादी संख्या 2 की संपत्ति थी।

8. यह निर्धारित किया गया था कि मद संख्या 6(b) और 7 में उल्लिखित व्यवसाय और संपत्तियों को गलती से मुकदमे में शामिल किया गया था।

9. विदित हो कि समझौता याचिका के खण्ड (k) में स्पष्ट रूप से निम्नलिखित कहा गया था: -

"k) कि पक्षकार अपनी-अपनी संपत्तियों पर पृथक एवं अनन्य कब्जा रखते हैं तथा उन्होंने अपने-अपने हिस्से में आवंटित संपत्तियों पर पृथक एवं अनन्य कब्जा प्राप्त कर लिया है।"

10. विद्वान ट्रायल जज ने संतुष्ट होकर समझौता याचिका स्वीकार कर ली और 3.4.1964 को किशोरी लाल कसेरा को एकपक्षीय मानते हुए समझौता डिक्री पारित की:

11. जब मामला इस प्रकार था, किशोरी लाल कसेरा के कानूनी प्रतिनिधियों, वर्तमान अपीलकर्ताओं ने, इस आधार पर एक नया विभाजन वाद संख्या 49/1973 शुरू किया कि पहले का डिक्री धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया था। उक्त वाद में, उन्होंने अपने लिए संपत्ति का 1/11वां हिस्सा मांगा, जो कि पहले के वाद पी.एस. संख्या 131/1962 में शामिल था। उक्त वाद 27 अगस्त, 1994 को खारिज कर दिया गया था। उक्त निर्णय से असंतुष्ट होने के कारण, किशोरी लाल कसेरा ने टाइटल सूट संख्या 109/1994 को पेश किया, जिसे अभियोजन की कमी के कारण 6.1.2004 को खारिज कर दिया गया था। इस मोड़ पर, प्रतिवादियों ने पी.एस. में पारित डिक्री के निष्पादन की मांग करते हुए निष्पादन वाद संख्या 8/2004 दायर किया। 1962 की संख्या 131 के तहत मामला दर्ज किया गया है। उल्लेखनीय है कि इस बीच किशोरी लाल कसेरा की मृत्यु हो गई थी, इसलिए उनके कानूनी उत्तराधिकारियों, अपीलकर्ताओं के विरुद्ध जुर्माना लगाया गया था।

12. अपीलकर्ताओं द्वारा एक आपत्ति उठाई गई थी कि निष्पादन की कार्यवाही सीमा द्वारा वर्जित थी और इसलिए, खारिज करने योग्य थी। विद्वान उप-न्यायाधीश ने निष्पादन की कार्यवाही को इस आधार पर खारिज कर दिया कि यह पूरी तरह से सीमा द्वारा वर्जित था।

13. उक्त आदेश से व्यथित होकर, प्रतिवादियों ने सिविल प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में 'सीपीसी') की धारा 115 के तहत सी.आर. संख्या 53/2007 प्रस्तुत किया और विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस आधार पर उक्त संशोधन को अनुमति दी कि संशोधनकर्ताओं द्वारा

प्रस्तुत निष्पादन मामला सीमा द्वारा वर्जित नहीं था। उक्त उद्देश्य के लिए, विद्वान एकल न्यायाधीश ने भारती देवी बनाम फागू महतो[1] के निर्णय पर भरोसा किया। उक्त आदेश की कानूनी पर्याप्तता इस अपील में चुनौती का विषय है।

14. हमने अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील श्री अंबोज कुमार सिन्हा और उत्तरदाताओं के विद्वान वकील श्री एसएस शमशेरी को सुना है।

15. निष्पादन न्यायालय और उच्च न्यायालय के समक्ष जो दो मौलिक और महत्वपूर्ण मुद्दे उभरे थे और जो इस न्यायालय तक भी पहुंचे हैं, वे हैं कि क्या समझौते के आधार पर प्रथम दृष्टया न्यायालय द्वारा पारित डिक्री प्रवर्तनीय हो गई थी या उसे प्रारंभिक डिक्री का दर्जा प्राप्त था जिसके लिए उसे निष्पादनीय बनाने के लिए अंतिम डिक्री कार्यवाही पूरी करने की आवश्यकता थी और क्या निष्पादन कार्यवाही सीमा अवधि के कानून के तहत अस्थिर थी।

16. हम पहले मुद्दे पर विचार करेंगे। संपूर्ण समझौता आवेदन के सार को ध्यान से देखने पर, हम इस विचारित दृष्टिकोण पर पहुंचे हैं कि समझौते के पक्षकारों ने संपूर्ण विवाद का निपटारा कर दिया है। प्रतिवादी संख्या 3, जो वर्तमान अपीलकर्ताओं का पूर्ववर्ती हितधारक था, को कोई हिस्सा आवंटित नहीं किया गया था। जैसा कि समझौते की शर्तों से स्पष्ट है, जो डिक्री का हिस्सा थी, पक्षों ने स्वीकार किया था कि वे क्रमशः अपनी-अपनी संपत्तियों के अलग-अलग और अनन्य कब्जे में थे और उन्होंने अपने-अपने शेयरों को आवंटित संपत्तियों का अलग-अलग और अनन्य कब्जा प्राप्त कर लिया था। इस प्रकार, उनके संबंधित शेयर और अनन्य कब्जे को उक्त समझौता याचिका के आधार पर स्वीकार किया गया और एक डिक्री तैयार की गई। न्यायालय ने समझौते की सामग्री पर ध्यान दिया था, जिसमें यह प्रार्थना की गई थी कि डिक्री समझौते की शर्तों के अनुसार पारित की जाए। यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि न्यायालय ने इस आधार पर कार्यवाही की थी कि वह समझौता याचिका में निर्धारित शर्तों के अनुसार मुकदमे का अंतिम रूप से निपटारा कर रहा था। समझौते के आवेदन में अनन्य कब्जे

का तथ्य भी दर्ज किया गया था। यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि पक्षों को विभिन्न अचल संपत्तियों पर अलग-अलग कब्ज़ा दिया गया है।

17. उपरोक्त के अलावा, प्रतिवादियों द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में यह स्वीकार किया गया है कि आबंटन के अनुसार कब्जा पक्षकारों के पास ही रहा। जवाबी हलफनामे के उक्त अंश को पुनः प्रस्तुत करना लाभदायक है:-

> "यहां यह उल्लेख करना उचित है कि जिन पक्षों को डिक्री के अनुसार हिस्सा आवंटित किया गया था, उनके पास उनका हिस्सा मौजूद था और निर्णय में यह लिखा गया था कि कोई प्रारंभिक, अंतिम डिक्री या निष्पादन दायर करने की आवश्यकता नहीं थी। हालांकि किशोरी लाल कसेरा को समझौता डिक्री के बारे में पूरी जानकारी थी, लेकिन उन्होंने सीमा अवधि के भीतर डिक्री को चुनौती नहीं दी, इसलिए समझौता डिक्री किशोरी लाल कसेरा सहित सभी पक्षों के खिलाफ अंतिम और पूर्ण हो गई।“

18. उपरोक्त के बावजूद, प्रतिवादियों के विद्वान वकील द्वारा यह तर्क दिया गया है कि विभाजन के लिए मुकदमे में अंतिम डिक्री तैयार करना अनिवार्य है। इस संदर्भ में, हम राचकोंडा वेंकट राव और अन्य बनाम आर. सत्या बाई (D) एल.आर. और अन्य[2] के निर्णय का संदर्भ दे सकते हैं जिसमें निम्नलिखित कहा गया है:

> "समझौता आवेदन में भविष्य की कार्रवाई के बारे में कोई खंड नहीं है जो स्पष्ट संकेत देता है कि संयुक्त परिवार की संपत्तियों के विभाजन के सवाल पर भविष्य के लिए कुछ भी नहीं छोड़ा गया था। आखिरकार इस विवाद को सदा के लिए समाप्त कर दिया गया।"

ऐसा कहने के बाद, बेंच ने निम्नानुसार टिप्पणी की: -

> " वास्तव में यह डिक्री भविष्य के लिए कुछ नहीं छोड़ती। जैसा कि पहले देखा गया है, प्रारंभिक डिक्री में सामान्यतः न्यायालय पक्षों के शेयरों की घोषणा

करता है तथा विभाजित की जाने वाली संपत्तियों को निर्दिष्ट करता है, यदि विभाजित की जाने वाली संपत्तियों के बारे में कोई विवाद होता है। पक्षों के शेयरों तथा विभाजित की जाने वाली संपत्तियों की घोषणा करने के पश्चात न्यायालय धारा 26, आर. 13, सी.पी.सी. के अनुसार विभाजन का तरीका सुझाने के लिए एक आयुक्त की नियुक्ति करता है। आदेश 26, आर. 13, सी.पी.सी. के अवलोकन से पता चलता है कि यह विभाजन के लिए प्रारंभिक डिक्री पारित होने के पश्चात लागू होता है। वर्तमान मामले में विभाजन के लिए कोई प्रारंभिक डिक्री नहीं थी, अतः धारा 13, सी.पी.सी. लागू नहीं होती। यदि वादीगण 13 जुलाई, 1978 की डिक्री को प्रारंभिक डिक्री मानते थे, तो उन्होंने अंतिम डिक्री कार्यवाही के लिए आवेदन करने में 13 वर्ष तक प्रतीक्षा क्यों की? इसका एकमात्र उत्तर यह है कि वादीगण जानते थे और वे हमेशा मानते थे कि 1978 की डिक्री विभाजन के लिए अंतिम डिक्री थी और यह केवल समय बीतने और संपत्तियों के मूल्य में परिवर्तन था जो उनकी अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं था, जिसने वादीगण को ऐसा आवेदन करने के लिए प्रेरित किया।

19. **मुजफ्फर हुसैन बनाम शराफत हुसैन**[3] **में** यह निम्नानुसार निर्धारित किया गया है: - पीठ ने कहा,

> “हमारा मानना है कि सिविल कोर्ट द्वारा पारित डिक्री को विभाजन के लिए अंतिम आदेश माना जाना चाहिए। यह सच है कि डिक्री पक्षों द्वारा दायर किए गए समझौते के आधार पर पारित की गई थी, लेकिन तथ्य यह है कि यह विभाजन के मुकदमे में पारित की गई थी, और इसका प्रभाव संपत्ति के एक विशिष्ट हिस्से को वादी को संपत्ति में उसके हिस्से के रूप में आवंटित करना था। हम जिस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं, वह मद्रास उच्च न्यायालय **के थिरुवेंगदथमैया बनाम मुंगिया**[4] के एक निर्णय द्वारा समर्थित है।"

20. रघुबीर साहू बनाम अजोध्या साहू[5] में प्रभाग **पटना उच्च न्यायालय** की खंडपीठ ने इस प्रकार फैसला सुनाया था: -

> " वर्तमान मामले में, डिक्री समझौते पर पारित की गई थी। यह स्वीकार किया गया कि समझौते द्वारा, प्रत्येक पक्ष के हिस्से में आवंटित संपत्तियों को स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया गया था और प्रत्येक को आवंटित संपत्तियों की अनुसूचियां समझौता याचिका में संलग्न की गई थीं। इसलिए, आगे की जांच बिल्कुल भी आवश्यक नहीं थी। ऐसी परिस्थितियों में, डिक्री ने न केवल संपत्तियों में रुचि रखने वाले कई पक्षों के अधिकारों की घोषणा की, बल्कि प्रत्येक पक्ष के संबंधित शेयरों के अनुसार संपत्तियों को आवंटित भी किया। इसलिए, यह प्रारंभिक डिक्री नहीं थी, बल्कि यह मुकदमे में अंतिम डिक्री थी।"

21. **रेणु देवी बनाम महेंद्र सिंह और अन्य[6]'** के अंदर उक्त डिक्री के अनुसरण में एक समझौता डिक्री और शेयरों के आवंटन के प्रभाव से निपटा गया था। दो- न्यायाधीश बेंच ने रघुबीर साहू बनाम अजोध्या साहू (सुप्रा) और मुजफ्फर हुसैन (सुप्रा) के फैसलों का उल्लेख किया और कहा कि उक्त अधिकारियों में कानून सही ढंग से कहा गया था।

22. उक्त मामले में, मुल्ला द्वारा सी.पी.सी. का संदर्भ देने के पश्चात, इस न्यायालय ने प्रारंभिक तथा अंतिम डिक्री के बीच अंतर करते हुए कहा है कि प्रारंभिक डिक्री, विभाजन के पक्षकारों के अधिकारों या शेयरों की घोषणा करती है। एक बार जब शेयरों की घोषणा कर दी जाती है तथा संपत्ति का वास्तविक विभाजन करने तथा विभाजित संपत्ति पर पक्षकारों को अलग-अलग कब्जा देने के लिए आगे की जांच की जानी बाकी रह जाती है, तो ऐसी जांच की जाएगी तथा आगे की जांच के परिणाम के अनुसार अंतिम डिक्री पारित की जाएगी। प्रारंभिक डिक्री वह होती है जो पक्षों के अधिकारों तथा दायित्वों की घोषणा करती है तथा वास्तविक परिणाम को आगे की कार्यवाही में हल करने के लिए छोड़ देती है। फिर, प्रारंभिक डिक्री के अनुसरण में की गई आगे की जांच के परिणामस्वरूप, पक्षों के अधिकारों का अंतिम रूप से निर्धारण किया जाता है तथा ऐसे निर्धारण के अनुसार डिक्री पारित की जाती है, जो अंतिम डिक्री होती है। इस प्रकार,

मूल रूप से, प्रारंभिक और अंतिम डिक्री के बीच अंतर यह है कि: प्रारंभिक डिक्री केवल पक्षों के अधिकारों और शेयरों की घोषणा करती है और प्रारंभिक डिक्री में दिए गए निर्देशों के अनुसार कुछ और जांच करने और संचालित करने के लिए जगह छोड़ती है, जिसकी जांच की गई है और पक्षों के अधिकारों को अंतिम रूप से निर्धारित किया गया है, ऐसे निर्धारण को शामिल करते हुए एक डिक्री तैयार की जानी चाहिए जो अंतिम डिक्री है।

23. उपरोक्त प्राधिकरणों में निर्धारित सिद्धांतों को लागू करते हुए, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि मामले में, पक्षों ने समझौता किया और स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि वे संपत्तियों के अलग-अलग और अनन्य कब्जे में थे और उन्हें पहले ही आवंटित किया जा चुका था। यह भी स्वीकार किया गया कि वे अपने संबंधित शेयरों के कब्जे में थे और इसलिए, कोई अंतिम डिक्री या निष्पादन दायर करने की आवश्यकता नहीं थी। यह प्रदर्शित करने योग्य है कि समझौता आवेदन में भविष्य की कार्रवाई के बारे में कोई खंड नहीं है। पक्ष पूरी तरह से सचेत थे और सही भी थे, कि उनके अधिकारों को फलित किया गया था और उनके कब्जे को विशेष रूप से निर्धारित किया गया था। वे अच्छी तरह से जानते थे कि डिक्री प्रकृति में अंतिम थी क्योंकि उनके शेयर आवंटित किए गए थे और कुछ भी करने के लिए नहीं बचा था। उनके अधिकार अंतिम हो गए थे और किसी भी स्पेक्ट्रम से आगे की जांच करने की आवश्यकता नहीं थी। पूरी बात समझौते की नींव पर पारित डिक्री में सन्निहित थी।

24. यह ध्यान में रखना चाहिए कि 'समझौता' शब्द का अर्थ अनिवार्य रूप से आपसी सहमति से मतभेदों का समाधान करना है। ऐसी प्रक्रिया में, विरोधी दावे शांत हो जाते हैं: पक्षों के बीच विवाद को उचित तरीके से समाप्त कर दिया जाता है। पक्षों द्वारा किया गया समझौता मुकदमेबाजी की लड़ाई को समाप्त कर देता है। कभी-कभी पक्षकारों को लगता है कि यह दुर्भाग्यपूर्ण कड़वा संघर्ष है और वे विवाद को सुलझाने के लिए समझदारी से काम लेते हैं। कुछ मामलों में, शुभचिंतकों के हस्तक्षेप से सुलह प्रक्रिया शुरू होती है और अंततः आम सहमति और सहमति से अधिकार ठोस हो जाते हैं।

स्पष्ट मन से किया गया पारस्परिक समझौता महान माना जाता है। यह मानव मन के शानदार और राजसी पहलुओं को दर्शाता है। मामलों की उच्च स्थिति उत्कृष्ट गंभीरता और सामाजिक स्थिरता का सार लाती है। वर्तमान मामले में, जैसा कि तथ्यात्मक मैट्रिक्स से पता चलता है, एक डिक्री सभी कोणों से संपूर्णता में एक समझौते की नींव पर पारित की गई थी, जिसमें भविष्य में कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं थी। मामले को पूरी तरह से निपटारा कर दिया गया और अदालत ने उसी पर स्वीकृति की मुहर लगा दी थी। इस प्रकार, अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि 03.04.1964 की समझौता डिक्री एक अंतिम डिक्री थी।

25. वर्तमान में, हम इस मुद्दे पर विचार करेंगे कि प्रतिवादियों द्वारा लगाया गया निष्पादन सीमा अवधि द्वारा वर्जित था या नहीं। निष्पादन न्यायालय ने दिनांक 10.07.2006 के अपने आदेश द्वारा वर्तमान अपीलकर्ताओं की दलील को स्वीकार कर लिया और यह निष्कर्ष निकाला कि डिक्री धारक द्वारा दायर निष्पादन याचिका सीमा अवधि द्वारा पूरी तरह वर्जित थी। सिविल रिवीजन में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने कई बिंदुओं पर निर्णय को पलट दिया;

(i) कि पहले मुकदमे में पारित एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया और विपक्षी पक्षों के पिता द्वारा कोई आपत्ति नहीं उठाई गई, यदि वह इससे व्यथित थे, तो लगभग 9 वर्षों तक, हालांकि वह उपस्थित हुए थे और उन्हें पहले मुकदमे के बारे में पूरी जानकारी थी;

(ii) कि समझौता डिक्री के अनुसार, पक्षकारों के पास उन्हें आवंटित संबंधित शेयर थे और तदनुसार, न तो प्रारंभिक और न ही अंतिम डिक्री तैयार की गई थी और याचिकाकर्ताओं के लिए समझौता डिक्री के प्रवर्तन के लिए निष्पादन मामला दायर करने का कोई अवसर नहीं था;

(iii) कि पहले मुकदमे में पारित समझौता डिक्री को चुनौती देने वाला दूसरा मुकदमा लगभग 21 वर्षों तक लंबित रहा;

(iv) कि दूसरे मुकदमे की बर्खास्तगी के खिलाफ दायर अपील भी लगभग 10 वर्षों तक लंबित रही।;

(v) कि अपील खारिज होने और दूसरे मुकदमे में पारित निर्णय और डिक्री के अंतिम होने के बाद, याचिकाकर्ता द्वारा भवन के भूतल में चलाए जा रहे पारिवारिक व्यवसाय से बेदखली का आरोप लगाते हुए निष्पादन मुकदमा दायर किया गया; और (vi) कि ऐसे आरोप के आधार पर, पहले मुकदमे में पारित समझौता डिक्री लागू होने योग्य हो गई।

26. उपर्युक्त कारणों के अलावा, विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह राय दी है कि निष्पादन मामले को विद्वान उप-न्यायाधीश के पूर्ववर्ती द्वारा स्वीकार किए जाने के बाद, संभवतः देरी को माफ करने के बाद, उत्तराधिकारी को इसे सीमा के आधार पर खारिज नहीं करना चाहिए था। उन्होंने भारती देवी (सुप्रा) में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया और तर्क दिया कि निष्पादन कार्यवाही शुरू करने में कोई देरी नहीं हुई थी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने निष्कर्ष को पुष्ट करने के लिए वर्तमान अपीलकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत लंबित विविध अपील संख्या 369/2008 पर भी ध्यान दिया।

27. कानून में यह अच्छी तरह से स्थापित है कि एक प्रारंभिक डिक्री अधिकारों और दायित्वों की घोषणा करती है, लेकिन किसी दिए गए मामले में, एक डिक्री प्रारंभिक और अंतिम दोनों हो सकती है और इसके अलावा, एक डिक्री आंशिक रूप से प्रारंभिक और आंशिक रूप से अंतिम हो सकती है। राचकोंडा वेंकट राव बनाम आर सत्या बाई[7] में ऐसा माना गया है। यह ध्यान देने योग्य है कि जो निष्पादन योग्य है वह अंतिम डिक्री है और प्रारंभिक डिक्री नहीं है जब तक कि अंतिम डिक्री प्रारंभिक डिक्री का हिस्सा न हो। इसके अलावा, अंतिम डिक्री कार्यवाही किसी भी समय शुरू की जा सकती है। हशम अब्बास सय्यद बनाम उस्मान अब्बास सय्यद और अन्य[8] में ऐसा कहा गया है।

28. बिकोबा देवड़ा गायकवाड़ और अन्य बनाम हीराबाई मारुतिराव घोरगरे और अन्य[9], इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों वाली पीठ ने माना है कि जब कोई मुकदमा पूरी तरह से

निपटाया जाता है, तभी अंतिम डिक्री अस्तित्व में आती है। उक्त मामले में, यह भी निर्धारित किया गया है कि अंतिम डिक्री पारित करने की दिशा में कदम उठाने के लिए किया गया आवेदन निष्पादन आवेदन नहीं है और इसके अलावा, डिक्री की प्रकृति का पता लगाने के लिए, न्यायालय के इरादे पर अटकलें लगाने के बजाय, इसकी शर्तों को देखना होगा।

29. उपर्युक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए तथा यह मानते हुए कि मामले में समझौते के आधार पर पारित डिक्री अंतिम डिक्री है, यह विचार किया जाना चाहिए कि क्या निष्पादन सीमा अवधि द्वारा वर्जित है। सीमा अधिनियम (संक्षिप्त रूप में 'अधिनियम') का अनुच्छेद 136 इस प्रकार है:-

आवेदन का विवरण	**सीमा की अवधि**	**शुरू करने की अवधि**
136. किसी भी डिक्री (अनिवार्य निषेधाज्ञा देने वाली डिक्री के अलावा) या किसी भी सिविल कोर्ट के आदेश के निष्पादन के लिए।	12 साल	जब डिक्री या आदेश प्रवर्तनीय हो जाता है या जहां डिक्री या कोई बाद का आदेश किसी निश्चित तिथि या आवर्ती अवधियों पर किसी धन का भुगतान या किसी संपत्ति की डिलीवरी करने का निर्देश देता है, जब भुगतान या डिलीवरी करने में चूक होती है जिसके संबंध में निष्पादन की मांग की जाती है, तो ऐसा होता है; बशर्ते कि शाश्वत निषेधाज्ञा देने वाली डिक्री के प्रवर्तन या निष्पादन के लिए आवेदन

किसी सीमा अवधि के अधीन
नहीं होगा।"

30. उक्त अनुच्छेद के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि किसी भी सिविल न्यायालय के आदेश (अनिवार्य निषेधाज्ञा प्रदान करने वाले आदेश के अलावा) या डिक्री के निष्पादन के लिए आवेदन बारह वर्ष की अवधि के भीतर दायर किया जाना चाहिए। डॉ. चिरंजी लाल (डी) बाय एल.आर.एस.. बनाम हरि दास (डी) बाय एल.आर.एस[10], में, यह प्रश्न उठा कि क्या अंतिम डिक्री तभी लागू होती है जब वह स्टाम्प पेपर पर लिखी जाती है। विवाद से निपटने वाली तीन न्यायाधीशों की पीठ ने कहा है कि सीमा अधिनियम की धारा 136 डिक्री के निष्पादन के लिए दो शर्तें पूर्व निर्धारित करती है; सबसे पहले, निर्णय को डिक्री में परिवर्तित किया जाना चाहिए और दूसरी बात, डिक्री लागू होनी चाहिए। यह दलील कि सीमा की अवधि उस तारीख से चलनी शुरू होती है जब डिक्री लागू होती है, यानी, जब डिक्री स्टाम्प पेपर पर लिखी जाती है, अस्वीकार्य है। पीठ ने उक्त पहलू को विस्तृत करते हुए, निम्नलिखित निर्धारित किया:-

> "24. विभाजन के लिए एक मुकदमे में एक डिक्री अचल संपत्तियों में पक्षों के अधिकारों की घोषणा करती है और शेयरों को मीटर और सीमाओं से विभाजित करती है। चूंकि विभाजन के लिए एक मुकदमे में एक डिक्री अचल संपत्तियों के संबंध में पक्षों के अधिकारों और दायित्वों का निर्माण करती है, इसलिए इसे भारतीय स्टाम्प अधिनियम के तहत स्टाम्प शुल्क के भुगतान के लिए उत्तरदायी साधन माना जाता है। स्टाम्प अधिनियम का उद्देश्य राज्य के लिए राजस्व सुरक्षित करना है, स्टाम्प अधिनियम की योजना यह प्रदान करती है कि विभाजन के एक डिक्री को विधिवत स्टाम्प नहीं किया जा सकता है और एक बार जब आवश्यक स्टाम्प शुल्क के साथ जुर्माना, यदि कोई हो, का भुगतान किया जाता है तो डिक्री पर कार्रवाई की जा सकती है।

25. विभाजन के लिए मुकदमे में अंतिम डिक्री का संलग्न होना डिक्री की तिथि से संबंधित होगा। ऐसी डिक्री के निष्पादन के लिए सीमा अवधि की शुरुआत स्टाम्प पेपर पर ऐसी डिक्री के संलग्न होने की तिथि पर निर्भर नहीं की जा सकती। स्टाम्प पेपर प्रस्तुत करने की तिथि एक अनिश्चित कार्य है, जो किसी पक्ष के अधिकार क्षेत्र, अधिकार क्षेत्र और नियंत्रण में है। स्टाम्प पेपर प्रस्तुत करने के लिए कोई तिथि या अवधि तय नहीं की गई है। न्यायालय को स्टाम्प पेपर प्रस्तुत करने के लिए कोई समय मांगने या देने की आवश्यकता वाला कोई नियम हमें नहीं दिखाया गया है। स्टाम्प पेपर प्रस्तुत न करने के अपने कृत्य से कोई पक्ष सीमा अवधि के चलने को नहीं रोक सकता। कोई भी अपने स्वयं के गलत का लाभ नहीं उठा सकता। यह प्रस्ताव कि स्टाम्प पेपर प्रस्तुत किए जाने और उस पर डिक्री संलग्न होने तक सीमा अवधि निलंबित रहेगी और उसके बाद ही बारह वर्ष की अवधि शुरू होगी, बेतुकी बात होगी। यशवंत देवराव देशमुख बनाम वालचंद रामचंद कोठारी [1950 एससीआर 852: एआईआर 1951 एससी 16] में कहा गया था कि देय राशि पर न्यायालय शुल्क का भुगतान पूरी तरह से डिक्री धारक की शक्ति में था और उसे तुरंत भुगतान करने से रोकने के लिए कुछ भी नहीं था; यह एक ऐसा आदेश था जो पारित होने की तारीख से ही निष्पादन योग्य था।

26. सीमा के नियमों का उद्देश्य यह देखना है कि पक्षकार विलम्बकारी रणनीति का सहारा न लें, बल्कि तुरंत अपना उपाय तलाशें। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, डिक्री को शामिल करने के लिए स्टाम्प पेपर प्रस्तुत करने की समय सीमा या स्टाम्प पेपर पर डिक्री को शामिल करने की समय सीमा निर्धारित करने वाला कोई वैधानिक प्रावधान नहीं है और डिक्री पारित करने वाले न्यायालय पर कोई वैधानिक दायित्व नहीं है कि वह पक्षकारों को डिक्री को शामिल करने के लिए स्टाम्प पेपर प्रस्तुत करने का निर्देश दे। वर्तमान मामले में न्यायालय ने पक्षकारों को डिक्री को शामिल करने के उद्देश्य से स्टाम्प पेपर प्रस्तुत करने

का निर्देश देने वाला कोई आदेश पारित नहीं किया है। केवल इसलिए कि कोई निर्देश नहीं है। यदि न्यायालय को डिक्री को शामिल करने के लिए स्टाम्प पेपर प्रस्तुत करने की आवश्यकता है या कानून द्वारा कोई समय सीमा निर्धारित नहीं है, तो इसका मतलब यह नहीं है कि पक्षकार अपनी मर्जी से स्टाम्प पेपर प्रस्तुत कर सकता है और दावा कर सकता है कि अधिनियम के अनुच्छेद 136 के तहत प्रदान की गई सीमा अवधि उसके बाद ही शुरू होगी जब डिक्री उस पर शामिल हो जाएगी। विभाजन डिक्री के निष्पादन के लिए सीमा अवधि की शुरुआत स्टाम्प पेपर पर डिक्री के शामिल होने पर आकस्मिक नहीं बनाई जा सकती है।"

31. राम बचन राय एवं अन्य बनाम राम उदार राय एवं अन्य[11] में यह तर्क दिया गया था कि चूंकि डिक्री के प्रवर्तन की लागत निर्धारित नहीं की गई थी, इसलिए सीमा अवधि निर्णय एवं डिक्री की तिथि से शुरू नहीं हो सकती थी। न्यायालय ने डॉ. चिरंजी लाल (उप्रा) के निर्णय का संदर्भ दिया और उक्त निर्णय के पैराग्राफ 24 एवं 25 का संदर्भ देने के बाद स्पष्ट शब्दों में यह विचार व्यक्त किया कि अपरिहार्य निष्कर्ष यह था कि मुकदमा सीमा अवधि द्वारा वर्जित था।

32. वर्तमान मामले में, सिविल रिवीजन में पारित आदेश के समर्थन में, प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने यह तर्क दिया है कि जब पहले के समझौता डिक्री को धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया घोषित करने के लिए एक वाद दायर किया गया था और यह 21 वर्षों से अधिक समय तक लंबित रहा, तो सीमा की अवधि केवल वाद और उससे उत्पन्न अपील को खारिज किए जाने के बाद शुरू हुई क्योंकि केवल उक्त कार्यवाही के समापन पर, डिक्री लागू होने योग्य हो गई और इसके अलावा, उक्त कार्यवाही में लगे समय को सीमा अधिनियम की धारा 136 के तहत सीमा की अवधि की गणना के लिए बाहर रखा जाना है। हम पहले ही मान चुके हैं कि डिक्री एक अंतिम डिक्री थी। इसलिए, यह तुरंत निष्पादन योग्य थी। इस प्रकार, सवाल यह होगा कि 'क्या समय रोका गया था?'

एक प्रश्न पूछे जाने पर, बार में यह उचित रूप से स्वीकार किया गया कि किसी भी समय, किसी भी अदालत द्वारा पी.एस. में पारित निर्णय और डिक्री के संचालन पर रोक लगाने का कोई आदेश नहीं था। 1962 की संख्या 131 के अनुसार, विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या अपीलकर्ताओं द्वारा दायर वाद और अपील के लंबित रहने की अवधि को सीमा अवधि के उद्देश्य से बाहर रखा जाना चाहिए। इस संदर्भ में, हम रतन सिंह बनाम विजय सिंह और अन्य 12 के कथन का संदर्भ दे सकते हैं, जिसमें डिक्री की प्रवर्तनीयता की अवधारणा और अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित स्थगन आदेश के प्रभाव पर विचार करते हुए, पीठ ने इस प्रकार कहा:

> "8. कोई डिक्री कब लागू होने योग्य हो जाती है? आम तौर पर कोई डिक्री या आदेश अपनी तिथि से लागू होने योग्य हो जाता है। लेकिन ऐसे मामले अज्ञात नहीं हैं जब डिक्री किसी भविष्य की तिथि पर या कुछ निर्दिष्ट घटनाओं के होने पर लागू हो जाती है। "प्रवर्तनीय" शब्द का प्रयोग ऐसे डिक्री या आदेशों को भी शामिल करने के लिए किया गया है जो बाद में लागू हो जाते हैं।
>
> 9. अपील दायर करने से डिक्री की प्रवर्तनीयता प्रभावित नहीं होगी, जब तक कि अपीलीय न्यायालय इसके संचालन पर रोक नहीं लगाता। लेकिन अगर अपील के परिणामस्वरूप कोई डिक्री होती है जो निचली अदालत द्वारा पारित डिक्री को अधिरोहित करती है, तो अपीलीय अदालत की डिक्री ही प्रवर्तनीय हो जाती है। जब अपीलीय आदेश डिक्री के बराबर नहीं होता है तो कोई अधिरोहण नहीं होगा और इसलिए निचली अदालत की डिक्री प्रवर्तनीय बनी रहेगी।"

33. राम बचन राय (सुप्रा) में दो न्यायाधीशों की पीठ ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि आदेश IX नियम 13 के तहत एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने के लिए एक आवेदन खारिज कर दिया गया था, जिसे एक विविध अपील और अंततः एक सिविल विजन में चुनौती दी गई थी। किसी भी स्तर पर, किसी भी अदालत द्वारा स्थगन नहीं दिया

गया था। उसमें डिक्रीधारकों ने 12 साल बाद निष्पादन के लिए आवेदन दायर किया। इस संबंध में, यह माना गया कि निष्पादन कार्यवाही सीमा द्वारा वर्जित थी।

34. इस संदर्भ में मनोहर बनाम जयपाल सिंह[13] के निर्णय का संदर्भ लेना उपयोगी होगा। उक्त मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया गया है:

> "15. इस न्यायालय द्वारा दिनांक 21.3.1988 के आदेश के अनुसार पारित किया गया कथित स्थगन आदेश भी वादी डिक्रीधारक के लिए कोई सहायता नहीं करता है। विशेष अनुमति याचिका केवल दिनांक 1.7.1985 के आदेश के विरुद्ध दायर की गई थी, जिसमें दिनांक 2.9.1983 के निर्णय और डिक्री की समीक्षा करने से इनकार कर दिया गया था। दिनांक 1.7.1985 के आदेश के संचालन पर स्थगन सभी आशय और आशय के लिए निरर्थक था, क्योंकि समीक्षा याचिका पहले ही खारिज हो चुकी थी।
>
> 16. इस न्यायालय का यह निर्देश कि अंतर-लाभ की गणना जारी रहेगी और अपीलकर्ता द्वारा उसे जमा किया जाएगा, कोई महत्व नहीं रखता क्योंकि इसके कारण न तो कार्यवाही रोकी गई और न ही निर्णय और डिक्री के संचालन पर रोक लगाई गई। वास्तव में, यह डिक्री धारक के पक्ष में पारित किया गया आदेश था। उक्त निर्देश कब्जे के लिए डिक्री को निष्पादित करने में उसके रास्ते में नहीं आया।"

35. इस मामले में समझौता डिक्री को अंतिम डिक्री का दर्जा प्राप्त था। अपीलकर्ताओं द्वारा दायर किया गया दूसरा मुकदमा विभाजन और एकपक्षीय समझौता डिक्री को अमान्य घोषित करने के लिए था। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, पहले के फैसले या उसके आधार पर होने वाली किसी भी कार्यवाही पर कोई रोक नहीं थी। किसी भी न्यायालय से किसी भी निषेधाज्ञा के अभाव में डिक्रीधारक डिक्री को निष्पादित करने का हकदार था। यह कहने के लिए विशेष जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि डिक्री को निष्पादित करने में प्रतिवादियों के रास्ते में कोई बाधा या अक्षमता नहीं थी, लेकिन ऐसा नहीं

किया गया। इसलिए, अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि निष्पादन कार्यवाही की शुरुआत निस्संदेह सीमा द्वारा रोक दी गई थी। इस प्रकार विश्लेषण करने पर, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा बताए गए कारण बिल्कुल भी टिकने योग्य नहीं हैं। अधिनियम के अनुच्छेद 136 के तहत निर्धारित सीमा अवधि को माफ नहीं किया जा सकता था, जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा माना गया है। भारती देवी (सुप्रा) में दिए गए निर्णय पर भरोसा करना पूरी तरह से गलत है, क्योंकि उक्त मामले में निष्पादन कार्यवाही स्थायी निषेधाज्ञा के लिए शुरू की गई थी। इस पर कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता है और इसलिए उक्त निर्णय पर भरोसा करना गलत है।

36. परिणामस्वरूप, अपील स्वीकार की जाती है, सिविल रिवीजन में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द किया जाता है और निष्पादन न्यायालय के आदेश को बहाल किया जाता है। पक्षकारों को अपनी-अपनी लागतें वहन करनी होंगी।

डी.जी. **अपील की अनुमति दी।**

यह अनुवाद मधु कुमारी, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है।